International Journal of Sanskrit Research 2018; 4(6): 159-162

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2018; 4(6): 159-162
© 2018 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 17-09-2018
Accepted: 24-10-2018

Dr. Deepti Kumari
Sanskrit Teacher, Directorate of Education, Delhi, India

Dr. Jyoti
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Shyama Prasad Mukherji College for Women, University of Delhi, Delhi, India

Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Rajdhani College, University of Delhi, Delhi, India

Corresponding Author:
Dr. Asheesh Kumar
Assistant Professor, Department of Sanskrit, Rajdhani College, University of Delhi, Delhi, India

मीमांसा सिद्धांतों के द्वारा धर्मशास्त्र में उठे समस्याओं का समाधान

Dr. Deepti Kumari, Dr. Jyoti and Dr. Asheesh Kumar

सारांश

प्रस्तुत लेख में धार्म शास्त्र ग्रंथों के उन स्थानों को इंगित किया गया है जिनमें किसी प्रकार की शंका उत्पन्न हो रही थी तथा उस शंका के समाधाान हेतु मीमांसा सिद्धांतों को किस प्रकार प्रयोग किया गया है यह दर्शाया गया है इसके साथ ही यदि उन सिद्धांतों को नहीं प्रयोग किया जाता तो क्या समस्या उत्पन्न होती यह भी बताया गया है। धार्म शास्त्र ग्रंथों में कई ऐसे स्थान हैं जहां परस्पर विरोधाासए पुनरुद्रि दोषए विकल्प दोष इत्यादि उत्पन्न हो रहे थेए ऐसी स्थिति में ग्रंथों की प्रमाणिकता बनाए रखने के लिए उनमें उत्पन्न दोषों का परिहार आवश्यक हो गया था जिसके लिए मीमांसा सिद्धांतों की आवश्यकता पड़ी।

प्रस्तुत लेख में यही दर्शाया गया है कि किस प्रकार मीमांसा सिद्धांतों का प्रयोग धार्म शास्त्र ग्रंथों के समुचित व्याख्या हेतु किया गया है।

प्रस्तावना

मीमांसा शास्त्र के कई सिद्धांतों का प्रयोग धर्मशास्त्रकारों ने किया है जैसे अनुवाद, अतिदेश, अनुषङ्ग, उपलक्षण, विकल्प, अर्थवाद, प्रतिषेध, नियम, परिसंख्या इत्यादि।

इसके साथ ही मीमांसा न्यायों का प्रयोग भी धर्मशास्त्र में उठे कई प्रश्नों के उत्तर हेतु किया है जैसे माषमुद्ग न्याय, कपिञ्जल न्याय. प्रतिनिधि परिग्रह न्याय, काकाक्षि-गोलक न्याय, समस्याद्श्रुति न्याय इत्यादि। अब कुछ ऐसे स्थलों का निर्देश दिया जा रहा है जहाँ मीमांसा सिद्धांतों का प्रयोग करके कानून में उठी समस्या का समाधान किया गया है।

(1) याज्ञवल्क्य स्मृति (2/148) [1] पर विज्ञानेश्वर ने अपनी टीका में 'उपलक्षण' नामक मीमांसा-सिद्धांत की सहायता से 'सन्तानहीन स्त्री के दायादों का निर्धारण' किया है।

प्रसंग - सन्तानहीन स्त्री के दायादों के निर्धारण के संदर्भ में कहा गया है कि यदि उसका विवाह ब्राह्म आदि चार विधियों में से एक से हुआ हो तो उसके धन का अधिकारी उसका पति होता है. किन्तु यदि उसकी पुत्रियाँ हो तो फिर वे ही धन की अधिकारिणी होती हैं, किन्तु यदि उक्त चार प्रकार की विधि के अतिरिक्त विधि के अनुसार विवाह हुआ हो तो उसका स्त्रीधन उसके माता-पिता को प्राप्त होता है।

शंका- उपर्युक्त प्रसंग के संदर्भ में एक मनु वचन प्राप्त होता है कि "संतानहीन स्त्री को मृत्यु के पश्चात् उसका पितृदत्त धन उसको ब्राह्मणी की कन्या ग्रहण करें।" [2]

---

1 अप्रजस्त्रीधनं भर्तुर्ब्राह्मादिपु चतुर्ष्वपि।
दुहितृणां प्रसूता चेच्छेषेषु पितृगामि तत्।। (याज्ञ. 2/145)

2 स्त्रियास्तु यखवेद्वित्तं पित्रा दतं कथंचन।
ब्राह्मणी तद्धरेत्कन्या तदपत्ययस्य वा भवेत्।। (मनु. 9/198) [विज्ञा. (याज्ञ. 2/145)]

उपर्युक्त मनु के वचन पर यह शंका हो सकती है कि (हीनवर्णा) संतानहीन नारी की मृत्यु के बाद उसका धन ब्राह्मणी को कन्या का बताया है, क्या इसमें 'ब्राह्मणी' शब्द केवल जाति विशेष का वाचक है?

समाधाान - विज्ञानेश्वर ने उपर्युक्त शंका का समाधान उपलक्षण की सहायता से किया है। विज्ञानेश्वर के अनुसार 'ब्राह्मणी' शब्द केवल एक जाति विशेष के लिए नहीं है अपितु यह उत्तम जाति का उपलक्षक है अर्थात् अनपत्या हीन वर्ण की नारी का धन मृत्यूपरान्त उसकी उच्चवर्ण की सपत्नी की कन्या ग्रहण करे। तदनुसार अनपत्या वैश्यकन्या का धन उसकी मृत्यु के बाद क्षत्रिसया सपत्नी की कन्या ग्रहण करें।

कारण - विज्ञानेश्वर ने उपलक्षण की सहायता से उपर्युक्त अर्थ ग्रहण किया है, जिसका कारण यह हो सकता है कि तत्कालीन समाज में क्षत्रियों व वैश्यों द्वारा उच्चतर दर्जे की मांग की गई होगी, जो विशेषाधिकार केवल ब्राह्मणों तक सीमित था, वह क्षत्रियों एवं वैश्यों को भी प्राप्त होने लगा।

इसी प्रकार विज्ञानेश्वर ने याज्ञ. 2/43 पद्य [3] पर उपलक्षण की सहायता से पुनः ब्राह्मणों के विशेषाधिकार का विस्तार क्षत्रियों एवं वैश्यों के सन्दर्भ में भी किया है।

(2) मेधाातिथि (मनु. 8/4-7) [4] में गोबलीवर्द न्याय का प्रयोग नारद के वचन पर उठी शंका के समाधाान हेतु किया है।

नारद ने 2 प्रकार के ऋण बताए हैं - देयऋण व अदेयऋण। [5]

देय ऋण वह है जो या स्वयं उधार लिया हो वह चुकाना हो अथवा पिता द्वारा लिए गए उधार को पुत्र को चुकाना हो।

अदेय ऋण वह है जब स्वयं उधार ली गई राशि (ब्याज सहित) दुगुनी हो जाए (अर्थात् यदि उधार ली गई राशि दोगुनी से अधिक हो जाए तो वह दुगुनी से बढ़ी राशि अदेय होगी) तथा पिता द्वारा जुए आदि के लिए लिया गया ऋण अदेय होगा। [6]

शंका - यहाँ यह शंका उठायी जा सकती है कि जब एक बार देय ऋण के अन्तर्गत पिता द्वारा लिया ऋण परिगणित कर दिया तो पुनः उसे द्यूतादि के प्रसंग में 'अदेय ऋण' क्यों कहा गया?

समाधान - प्रस्तुत प्रश्न का उत्तर मेधातिथि ने गोबलीवर्दन्याय द्वारा दिया है। मेधा का कथन है कि द्यूतादि कृत ऋण 'देयऋण' से भिन्न है। इसलिए देय के अन्तर्गत द्यूतादि कृत का ग्रहण नहीं हो सकता। अतः गोबलीवर्दन्याय से देय के साथ-साथ द्यूतादिकृत अदेय का पृथक ग्रहण अपेक्षित है। [7]

गोबलीबर्द न्याय के विषय में यह कहा जा सकता है कि कभी-कभी विशेष व्यवस्था सामान्य व्यवस्था को भी बाधित कर देती है। जैसे यहाँ द्युतादि ऋण (विशेष व्यवस्था) 'देय ऋण' (सामान्य नियम) के अन्तर्गत न आकर उसको बाधित कर रही है।

(3) विज्ञानेश्वर ने याज्ञ. 2/4 [8] की टीका में अर्थवाद का प्रयोग किया है।

प्रसंग - राग, द्वेष अथवा भय से यदि सभ्य (सभासद्) धर्मशास्त्र के विरुद्ध व्यवहार करें तो उन्हें अपराधी को दिए जाने वाले दण्ड से दुगुना दण्ड देना चाहिए।

शंका - याज्ञ. ने राग आदि कारणों से धर्मशास्त्र के विरुद्ध व्यवहार करने पर सभासदों को जिस दण्ड व्यवस्था का निर्देश दिया है वह सभी सभासदों पर लागू नहीं होती क्योंकि गौतम (11-1) के अनुसार ब्राह्मण दण्डनीय नहीं माना जाता। [9]

तो प्रश्न उठता है कि उक्त प्रसंग में क्या राजा ब्राह्मण सभासद् को दण्ड नहीं दे सकता? इस प्रकार निश्चित विधान न होने के कारण यह विधि दूषित हो जाती है।

समाधान - विज्ञानेश्वर अपनी टीका (2/4) में उपर्युक्त शंका का परिहार अर्थवाद की सहायता से ही करते हैं।

विज्ञानेश्वर कहते हैं कि गौतम (11-1) का वचन 'ब्राह्मण दण्डनीय नहीं माना जाता' यह कोई विधि वाक्य नहीं है अपितु प्राशंसिक वाक्य हैं अर्थात् यह अर्थवाद मात्र है। [10] अतः ब्राह्मण सर्वथा अदण्ड्य नहीं हैं। इसलिए उपरोक्त (याज्ञ. 2/4) प्रसंग में सभासदों के दण्ड में ब्राह्मण भी समाहित है।

कारण - विज्ञानेश्वर ने ब्राह्मण के दण्ड के विषय में प्राप्त वाक्य को अर्थवाद माना है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि वे ब्राह्मणों को यह विशेषाधिकार नहीं देना चाहते थे क्योंकि यदि ब्राह्मण को दण्ड देने का विधान ही समाप्त कर दिया जाए तो न्यायतंत्र भ्रष्ट हो जाएगा क्योंकि

---

3 ब्राह्मणग्रहणं च श्रेयोजातेरपलक्षणम्। अतश्च क्षत्रियादिरपि परिक्षीणो वैशयादेः शनैः शनैर्दाप्यो यथोदयम्। [विज्ञा. (याज्ञ. 2/43)]

4 तेषामाद्यमृणादानं निक्षेपोऽस्वामिविक्रयः। संभूय च समुत्थानं दत्तस्यानपकर्म च।। (मनु. 2/4)
वेतनस्यैव चादानं संविदश्च व्यतिक्रमः। क्रयविक्रयानुशयो विवादः स्वामिपालयोः।। (मनु. 2/5)
सीमाविवादधर्मश्च पारुष्ये दण्डवाचिके। स्तेयं च साहसं चैव स्त्रीसंग्रहणमेव च।। (मनु. 2/6)
स्त्रीपुंधर्मो विभागश्च द्यूतमाह्वय एव च। पदान्यष्टादशैतानि व्यवहारास्थितावहि।। (मनु. 2/7)

5 ऋणं देयमदेयं च येन यत्र यथा च यत्। दानग्रहणधर्माश्चेति।' (नारद 1/1), मेधा. (मनु. 4-7)

6 तत्र देयमणं स्वकृतं पितृकृतं च यस्य च ऋक्थं हरेत्। अदेयं स्वकृतं द्विगुणादधिकं पितृकृतं च द्यूतादिभोगेनेति पुत्रेण भर्त्रा पित्र चेति। (नारद 1/16), मेधा. (मनु. 4-7)

7 यद्यपि देयमित्यत्रैतदन्तर्भूतं तथापि द्यूतादिकृतं विशेषानपेक्षं स्वरूपतो देयम्, इदं तु कर्तृनियमादिति गोबलीवर्दवखवति चेखेदो यावदिति दैगुण्यपर्यन्तं तत्रापि भेदः पूर्वगत्। (मेधा., मनु. 2/4-7)

8 रागाल्लोभाखयाद्वापि स्मृत्यपेतादिकारिणः। सभ्याः पृथक्पृथग्दण्ड्या विवादाद्विगुणं दमम्।। (याज्ञ. 2/4)

9 राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्। [(गौतम 11-1), विज्ञानेश्वर (याज्ञ. 2/4)]

10 न च 'राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्' इति (11-1) गौतम वचनान्नब्राह्मणा दण्डया इति मन्तव्यम्, तस्य प्रशंसार्थत्वात्। (विज्ञा. याज्ञ. 2/4)

ब्राह्मण भी सभासद् हैं तथा सभासद् का कर्तव्य है कि वे उचित मंत्रणा करके राजा को न्याय करने में उचित सलाह दे।
अत: जरूरी है कि ब्राह्मण सभासद् को मिथ्या न्याय करने पर केवल ब्राह्मण होने के कारण छोड़ न दिया जाए। सभासदों का दायित्व है कि वे ठीक से न्याय करें नहीं तो दण्ड भुगतने को तैयार रहें।
(4) विज्ञानेश्वर ने याज्ञ. 2/127 [11] की टीका में प्रतिषेध का अनुप्रयोग किया है।

प्रसंग - प्रसंग यह है कि जिसका पुत्र न हो, यदि उसने अपने गुरुओं की आज्ञा से किसी अन्य की पत्नी से पुत्र उत्पन्न किया हो तो वह पुत्र दोनों का (अर्थात् बीजी व क्षेत्री का) पिण्ड देने वाला तथा धनाधिकारी भी होता है।

शंका - उपर्युक्त नियोग व्यवस्था के प्रसंग में विज्ञा. मनु. 9/52 [12], 9/53 [13] पद्यों को इस व्यवस्था के प्रशंसात्मक वाक्य हेतु जोड़ते हैं तथा मनु. 9/59-68 [14] पद्यों को नियोग व्यवस्था की निन्दा हेतु उद्धृत करते हैं।
उपर्युक्त प्रसंग में यह शंका की जा सकती है कि नियोग व्यवस्था के प्रति मनु के प्रशंसात्मक पद्य एवं निन्दात्मक पद्य दोनों विद्यमान हैं, इस प्रकार यह करणीय है अथवा अकरणीय है, इसका निर्णय नहीं हो पाता है? या तो इसे विकल्प मान लिया जाए।

समाधान - विकल्प विज्ञानेश्वर को उपर्युक्त प्रतीत नहीं होता क्योंकि विकल्प से कोई निश्चित विधान नहीं हो पाता अत: विज्ञा. शंका का समाधान प्रतिषेध की सहायता से करते हैं।
ध्यातव्य हैं कि विधि व प्रतिषेध के लिए समान बल रहने पर ही विकल्प होता है किन्तु स्मृतियों में नियोग की बहुत निन्दा की गई है, एवं स्त्रियों के लिए परपुरुषगमन को अत्यन्त गर्हित माना गया है तथा 'संयम' की अत्यन्त प्रशंसा की गई है।

अत: प्रकृत में निषेध, विधि की अपेक्षा अधिक बलवान् है अत: नियोग निषिद्ध है। [15] इसी का समर्थन करते हुए मनु. 5/158, 159, 160, 161 पद्यों को विज्ञानेश्वर उद्धृत करते हैं।

कारण - प्रतिषेध के प्रयोग करने का कारण यह है कि समाज में नियोग प्रथा अमान्य हो गई थी। अत: टीकाकार के समक्ष यह समस्या थी कि शास्त्रोक्त नियोग का खण्डन किए बिना ही, उसे अमान्य कैसे ठहराए। अत: परवर्ती धर्मशास्त्रों ने इस परम्परा को कालबाह्य कहकर उसकी मान्यता स्वीकार नहीं की है।
विज्ञानेश्वर ने नियोग को बिल्कुल अमान्य ठहराया है, जिससे एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह निकलता है कि प्राय: शास्त्र में एकवाक्यता का सिद्धान्त माना गया है, परस्पर विरोध का परिहार किया गया है, यहाँ तक कि विरोध का परिहार करने के लिए कहीं-कहीं विकल्प को भी स्वीकार किया गया है, किन्तु उपयुक्त स्थान ऐसा है जहाँ एक नए सिद्धान्त का सूत्रपात विज्ञानेश्वर ने किया है - जिसके अनुसार परवर्ती पूर्व नियम का खण्डन अथवा निषेध कर सकता है अर्थात् नए नियम पुराने नियम को निरस्त कर सकते हैं।
याज्ञ. 2/127 पर विज्ञा. के नियोग के विषय में प्रतिषेध को प्रोफेसर एस. जी. मोघे ने भी अपनी पुस्तक "Studies in the Purva Mimamsa" osQ Article 'Vijnanisvara and Purva Mimamsa' में उद्धृत किया है। [16]

धर्मशास्त्र संबंधी संदर्भ ग्रन्थ (हिन्दी)

सिंह श्याम नारायण: प्राचीन भारत में व्यवहार विधि, स्वाति पब्लिकेशन्स, प्रथम संस्करण, 2005.

धर्मशास्त्र संबंधी संदर्भ ग्रन्थ (अंग्रेजी)

Chaube BN. Principles of Dharamashastra, Allahabad, Law Journal Press, Allahabad, 1948.
Davis Donald R. The Spirit of Hindu Law, Cambridge: Cambridge, University Press, 2010.
Derrett JDM. Essay in Classical and Modern Hindu Law, Vol.-I, E.J. Brill Leiden, 1976.
Derrett JDM. History of Indian Law, E.J. Brill, Lieden, 1973.
Derrett JDM. Religion, Law and State in India, Faber and Faber, London, 1968.
Diwan Paras. Modern Hindu Law, 9th edition, Allahabad Law Diwan Piyushee Agency, Allahabad, 1988.
Ghosha VN. A History of Indian Political Ideas, Oxford University Press, London, 1959 (reprint).
Ghoshal VN. Hindu Political Theories, Oxford University Press, London, 1927.
Gupta VK. Kautiliyan Jurisprundence, B.D. Gupta, Gali Arya Samaj, Bazar Sita Ram, Delhi, 1987.
Jha, Ganganath. Hindu Law in its Sources, Indian Press, Allahabad, 1933.
Jolly, Julies. History of Hindu Law, W. Thacker and Company, Calcutta, 1885.
Kane PV. History of Dharamashastra, Vol. III, Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona, 1973.

11 अपुत्रेण परक्षेत्रे नियोगोत्पादित: सुत:। उभयोरप्यसौ रिक्थी पिण्डदाता च धर्मत:।। (याज्ञ. 2/127)

12 क्रियाभ्युपगमात्त्वतद्बीजार्थं बीजार्थं यत्प्रदीयते।
तस्येह भगिनौ दृष्टौ बीजी क्षेत्रिक एव च।। [(मनु. 9/52) वि. याज्ञ. 2/127]

13 फलं त्वनभिसंधाय क्षेत्रिणां बीजिनां तथा।
प्रत्यक्षं क्षेत्रिणामर्थो बीजाद्योनिर्गरीयसी।। [(मनु. 9/52) वि. याज्ञ. 2/127)]

14 देवराद्वा सपिण्डाद्वा स्त्रिया सम्यङ्नियुक्तया।
प्रजेप्सिताधिगन्तव्या सन्तानस्य परिक्षये।। (मनु. 9/59 वि. याज्ञ. 2/127)
विधवायां नियुक्तस्तु धृताक्तो वाग्यतो निशि।
एकमुत्पादयेत्पुत्रं न द्वितीयं कथंचन।। (मनु. 9/60 वि. याज्ञ. 2/127)
नान्यस्मिन्विधवा नारी नियोक्तव्या द्विजातिभि:।
अन्यस्मिन्हि नियुञ्जाना धर्मं हन्यु: सनातनम्।। (मनु. 9/64 वि. याज्ञ. 2/127)
नोद्वा हिकेषु मन्त्रेषु नियोग: कीर्त्यते क्वचित्।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुन:।। (मनु. 9/65 वि. याज्ञ. 2/127)
अयं द्विजैर्हि विद्वद्भि: पशुधर्मो विगर्हित:।
मनुष्याणामपि प्रोक्तो वेने राज्यं प्रशासति।। (मनु. 9/66 वि. याज्ञ. 2/127)
स महीमखिला भुञ्जन् राजर्षिप्रवर: पुरा।
वर्णानां संकरं चक्रे कामोपहतचेतन:।। (मनु. 9/67 वि. याज्ञ. 2/127)
तत: प्रभृति यो मोहात् प्रमीतपतिकां स्त्रियम्।
नियोजयत्यपत्यार्थं तं विगर्हन्ति साधव:।। (मनु. 9/68 वि. याज्ञ. 2/127)

15 न च विहितप्रतिषिद्धत्वाद्विकल्प इति मन्तव्यम्, नियोक्तृणां निन्दाश्रवणात्, स्त्रीधर्मेषु व्यभिचारस्य बहुदोषश्रवणात्, संयमस्य प्रशस्तत्वाच्च। (वि.याज्ञ. 2/127)

16 Vijnanesvera points out that since glorificatory passage condemning Niyoga and praising the celibate life are also there, the prohibition is more powerful than the injunction. He, therefore, decides that this is not a fit case of option.

Lariviere, Richard W. (Ed.) Studies in Dharmashastras, Firma K.L.M., Calcutta, 1984.
Lingat, Robert. The Classical Law of India (translated by J.D.M. Derrell) "Indian edition, Thomson Press, New Delhi, 1973.
Mani BN. Laws of the Dharmashastra, Navrang, New Delhi, 1989.

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. उपाध्याय, गंगाप्रसाद: मीमांसा प्रदीप, (जैमिनी कृत 'पूर्व-मीमांसा' ग्रन्थ का आलोचनात्मक अध्ययन), प्रकाशक - ट्रेक्ट विभाग, आर्य समाज चौक, इलाहाबाद, 1961
2. उपाध्याय, वाचस्पति: मीमांसा दर्शन विमर्श, भारतीय विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 1976
3. दास, डॉ. राम प्रकाश: मीमांसा प्रमेय, सुकृति प्रकाशन (मर्यादित), नई दिल्ली
4. नेने, सोमनाथ: मीमांसा-दर्शन-विमर्श, प्रतिमा प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2008
5. शास्त्री, मण्डन मिश्र: मीमांसा दर्शन (महर्षि जैमिनी प्रवर्तित विचार शास्त्र का समालोचनात्मक अध्ययन), प्रकाशक - रमेश बुक डिपो, जयपुर।
6. Jha, Ganga Nath. Purva Mimamsa and Dharmashastra, Research Institute, 47, 1968.
7. Katju, Markandey. Mimamsa Rules of Interpretation, Year of Pub. 2003.
8. Moghe SG. Studies in Applied Purva Mimamsa, Ajanta Publications, New Delhi, 1998.
9. Natraja Ayyar AS. Mimamsa Jurisprudence (The Source of Hindu Law), Ganganath Jha Research Institute, Allahabad, 1952.
10. Sarkar KL. Mimamsa Rules of Interpretation (Collection of Tagore Law Lectures), 1905.
11. Shastri, Pashupatinath: Introduction to the Purva Mimamsa, Published by: Ashok Nath Bhattacharya, 41, Bag Bazar Street, Calcutta, 1923.
12. Shastri, Pashupatinath: Introduction to the Purva Mimamsa, Publisher & Place - Chowkhamba Oriental, Varanasi, 1980.